विअहुती भवन की विवाह उपासना

प्रेषक:-
कुमुद शर्मा
बलराम शर्मा
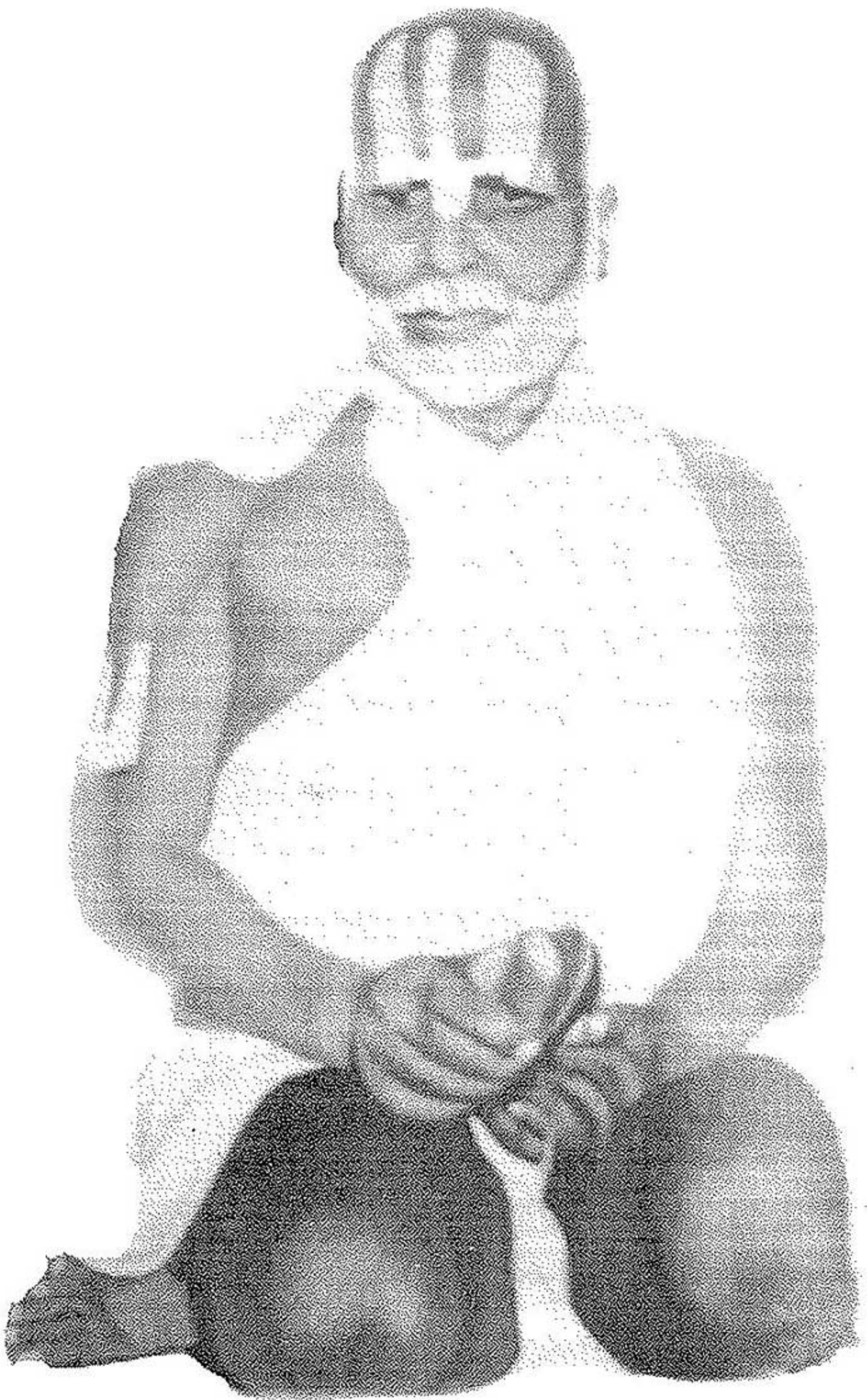
अनन्तश्री राम शंकर जी महाराज

अनन्त श्री वैद्यनाथ शरण जी महाराज

विअहुती भवन की विवाह उपासना का रहस्य

विअहुती भवन के संस्थापक श्री रामशंकर जी महाराज का जन्म 1894 ई॰ में बिहार के एक गाँव हसनपुरवा में हुआ था। 21 वर्ष की आयु में सन् 1915 में वे घर छोड़ कर अयोध्या चले गये और वहाँ ठठेरा मंदिर में पुजारी का काम करने लगे। उस समय तक श्री रामशंकर जी महाराज का परिचय बिहार के ही दूसरे संत श्री रामा जी से हो चुका था।

रामा जी इनसे उम्र में काफी बड़े थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि ये दुल्हा रूप के ऐसे उपासक और प्रेमी थे कि किसी भी जाति के दूल्हे को जोड़ा पहनाते और विवाह होने तक दूल्हे के माध्यम से अपने इष्टदेव की आराधना करते थे। **राम–चरित मानस** के पठन से पहले तो ये वन–यात्रा के करुण रस में डूब गये, पर जल्द ही "दुल्लह–रूप राम कर ध्याना" पर ही इनका मन पूरी तरह बस गया। ये दूल्हा बने श्री राम जी की छवि के लिये "नवसे बउआ" शब्द का ही सर्वदा प्रयोग करते थे। परात्परब्रह्म श्री राम जी इनके लिये सदैव दुल्हा रूप में ही विराजते थे। ऐसी पक्की भावना थी इनकी कि रामायण के पाठ में भी ये बालकांड और विवाह के प्रसंग से आगे नहीं बढ़ते थे। अगर कोई विवाह–प्रसंग से हटकर कोई और प्रश्न करता तो रामा जी उत्तर देने से मना ही कर देते थे। रामा जी कीर्त्तन बहुत सुंदर करते थे और अब साथ–साथ भगवान के विवाहोत्सव का भी प्रचार–प्रसार करने लगे थें।

सन 1912 में गोपालपुर ग्राम में आयोजित एक भागवत कथा समारोह में दोनो संतो – रामा जी महाराज और रामशंकर जी महाराज का अद्भुद् मिलन हुआ। श्री रामशंकर जी का प्रभावशाली रामायण पाठ श्री रामा जी को मुग्ध कर गया। उस समारोह में उपस्थित विशेष जानकारी रखने वाले लोगों को ऐसा ही आभास हुआ कि ये दोनो संत एक–दूसरे को गुप्त रूप से भली–भाँति पहचान रहे थे, भले ही व्यवहारिक रूप से उनका यह प्रथम मिलन ही था। श्री रामा जी अपने प्रीतम राम जी को ही "नौशे बबुआ" कहते थे, पर इस उत्सव में श्री राम शंकर जी को देखते ही नौशे बउआ कह कर बार–बार सम्बोधित करने लगे। रामा जी जीवन पर्यन्त इन्हें नौशे बबुआ ही कहते रहे। "खग जाने खग ही की भाषा" – इन दोनो संतो की आपसी पहचान इसी प्रकार की थी ।

इस मिलन के उपरान्त भगत जी (रामा जी) की ही प्रेरणा से रामशंकर जी 1915 में धरबार छोड़कर पत्नी सहित श्री अवध धाम चले गये थे। वहाँ पहुँच कर उन्हें ठठेरा मंदिर में पुजारी की नौकरी मिल गयी थी। इनके कीर्तन और पद–गान की कुशलता ने सारे अवधवासियों का मन मोह रखा था। ये सारे

शहर में पुजारी जी के ही नाम से जाने जाने लगे। आज भी पुजारी जी शब्द उन्हीं का बोध कराता है। इनकी दानशीलता, संत–सेवा, अष्टयाम एवं नवाह नामजप का अयोजन सभी को प्रभावित कर रहा था। इस बीच रामा जी सभी तरफ 'श्री राम जी–किशोरी जी" के विवाह – लीला और कलेवा उत्सव के आनन्द का काफी प्रसार कर चुके थे। 1921 के दिसम्बर महीने में अखिल भारतीय श्री रुपकला हरिनाम यश संकीर्तन सम्मेलन का आयोजन आज के तुलसी उद्यान के स्थल पर किया गया। इस सम्मेलन को अभूतपूर्व सफलता मिली। संतों, भक्तों, कीर्तन मंडलियों का मेला सा लग गया था। इस सम्मेलन का प्रधान अंग श्री सीताराम विवाह–कलेवा उत्सव 1912 से ही से बन चुका था। सम्मेलन के समापन पर श्री रामा जी ने यह प्रस्ताव रखा कि उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है अतः श्री राम शंकर जी पर अयोध्या के सभी लोग सम्मिलित रूप से दबाब बनायें कि वो ठठेरा मंदिर तक ही अपने को सीमित नहीं रखें, बल्कि बड़े पैमाने पर जन–कल्याण और युगल विवाहलीला एवं कलेवा का भार अपने उपर ले लें। श्री रामा जी ने कहा कि संत–महात्माओं का जन्म कीचड़ मे फँसे जीवों के उद्धार केलिये ही है। वे.एक स्थान से बँधकर बैठ जायेंगें तो सुदूर क्षेत्रों में पड़े लोगों का क्या होगा? यहीं पर तय हुआ कि हर महीने के दोनों पखवारे की पचंमी को विवाह–कलेवा लीला का आनन्द दूर–दर के ग्रामीण क्षेत्रों में भ्रमण कर लोगों को दिया जायगा। अवध के संतों के इस निर्णय के बाद प्रथम विवाह उत्सव 1922 में ठठेरा मंदिर में ही किया गया। इसके बाद 1923 के फागुन महीने में श्री पुजारी जी महाराज ने अपनी जन्मभूमि हसनपुरवा में बहुत ही वृहद रूप से इस उत्सव को मनाया। सैकड़ो गाँवों के लोगों ने इस विशाल आयोजन में भाग लिया। इस उत्सव का इतना प्रचार हुआ कि सिवान शहर के वकील, मुख्तार, मजिस्ट्रेट, मुन्सिफ तथा साहूकारों की टोली आयी और इस नवीन प्रकार के उत्सव से सभी बड़े ही प्रभावित हुए। बहुत आग्रह कर सिवान वालों ने इतने ही विशाल रूप में इस समारोह का दुबारा आयोजन करवाया। 1924 के फाल्गुन मास में पुजारी जी को जनकपुर में विवाह करने के लिये आमंत्रित किया गया। जनकपुर वासियों का प्रेम इस विवाह में ऐसा उमड़ा कि रामचरितमानस की इस पंक्ति "सुर प्रगट पूजा लेहि देहि आशीश अति सुख पावहि" का जब गायन हो रहा था तो सारी जनता को ऐसा आभास हुआ कि जैसे त्रेता युग में देवता लोग राम जी के विवाह के अवसर पर अपनी–अपनी पूजा ग्रहण किये थे, वही दृश्य उपस्थित हो गया हो।

इसी प्रकार इन दो महान संतों की कृपा से भगवान की विवाह लीला की एक निश्चित रूप रेखा और पद्धति तैयार हुई जिसको इन आचार्यों ने

रामचरित. मानस पर आधारित और स्वंय द्वारा रचित गभीर अर्थ से भरे पदों से सजाया है।

विवाह एवं कलेवा उत्सवों से प्राप्त वस्तुओं के वितरण के लिये एक कोठरी ली गयी थी वहीं पर और जमीन लेकर श्री पुजारी जी ने विअहुती भवन का निर्माण किया। अयोध्या के अंदर विअहुती भवन मिथिला के भाव से बसाया गया। आज भी यही परिपाटी चल रही है कि इस स्थान को जनकपुर मान यहाँ से अयोध्या के सारे संतो की सेवा की जाती है। पुजारी जी और रामा जी महाराज ने जिस उपासना पद्वति को आरम्भ किया उसको विअहुती भवन के वर्तमान महाराज जी ने बहुत आगे बढ़ाया है। आज रामनवमी, जानकी नवमी और जेठ महीने के पखवारे को छोड़कर साल के सभी पखवारे की पंचमी को विवाह उत्सव–पूजन, अष्टयाम यज्ञ, रामंचा पूजा अलग–अलग जगहों में मनायी जाती है। विअहुती–भवन मे निर्माण का कार्य भी उतना ही ज्यादा हुआ है जबकि सारे समय महारज जी को भ्रमण में ही बिताना पड़ता है। चार समय में सरकार अयोध्या पधारते हैं। इसी में उत्सवों की तैयारी की जाती है, उत्सव मनाये भी जाते हैं, और निर्माण का कार्य भी निरंतर चलता ही रहता है। लगता है साक्षात किशोरी जी की कृपा इस स्थान के उपर सदैव एक समान बनी रहती है। "भृकुटि विलास जासु जग होई; राम बाम दिसि सीता सोई।" ऐसा ही है विअहुती–भवन जिसकी संचालिका स्वंय किशोरी जी हैं जिनके एक इशारे पर सृजन और संहार होता है।

भगवान की विवाह लीला को ही इन महान संतों ने साधना का माध्यम क्यों बनाया इसको समझने के लिये और बातों पर भी घ्यान देने की आवश्यकता है। सबसे पहले इनको हिन्दू धर्म को झकझोरने की आवश्यकता महसूस हुई जो अंधविश्वास के दल–दल में धँसता ही जा रहा था। जिसको रास्ता दिखाने के लिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस जैसा अनमोल खजाना दिया है पर सभी उस रत्न की खान को भूले ही पड़े थे। सभी घरों में जहाँ–जहाँ भगत जी (रामा जी) और पुजारी जी के चरण गये लोगों ने रामचरित–मानस का पठन–चिन्तन शुरू कर दिया। इन्होंने यह स्थापित कर दिया कि रामचरित–मानस सभी वेद शास्त्रों का सार है। मानस की पुस्तक को नये लाल कपड़े का बेठन लगा चौकी पर रखकर विवाह–कलेवा उत्सव पूजन, नाम जप का अष्टयाम, तथा नवाह यज्ञ में श्रृँगार कर भगवान का प्रतीक बनाया जाता है। शुष्क ज्ञान प्रेम और भक्ति को नहीं जगा सकता। इन लोगों ने जिस माध्यम को चुना उसमें तो प्रेम ही प्रेम था।

हमारे वर्तमान महाराजजी विवाह लीला को इस प्रकार समझाते हैं कि मानव–जीवन में विवाह ही एक ऐसी घटना है जिसमें वर वधु के अतिरिक्त

दोनों के परिवार, इष्टमित्र, सज्जन, स्नेही जन सभी शामिल ही नहीं होते बल्कि उनकी सारी चेष्टायें आनन्दवर्धन के लिये होती हैं। समाज के भी सभी अंग इस अवसर पर आनन्द–वर्धन में योगदान करते हैं; यथा, माली, कुम्हार, बढ़ई, लोहार, डोम, ब्राह्मण आदि, इस प्रकार चतुर्दिक मात्र आनन्द और उल्लास की ही वृद्धि होती है। और दो प्राणियों के मिलन में आनन्द की हर प्रकार से वृद्धि हो पाती है।

सारा संसार आनन्द के प्रयास में लगा रहता है। परन्तु किसी भी विषय में स्थायी आनन्द नहीं मिल पाता है। एक के बाद दूसरी चीजें फीकी पड़ती जाती हैं और उसकी उपलब्धि भी अपने हाथ की चीज नहीं रह जाती। जितने प्रकार के विषयानन्द हैं, वे न तो स्थायी हैं और न संतोषप्रद। अतएव स्थायी आनन्द की खोज बराबर चलती रहती है। जहाँ बराबर कुछ न कुछ अभाव रहता है, वहाँ आनन्द की प्राप्ति एक विडम्बना बन जाती है। अतएव विषयानन्द से स्थायी आनन्द एवं संतोषप्रद आनन्द की प्राप्ति संभव नहीं है। आनन्द की प्राप्ति तो उसी स्थिति में संभव है जबकि किसी प्रकार के अभाव को पूरा करने के लिए एक क्षण भी समय बिताना नहीं पड़े, बल्कि केवल आनन्द में ही निमग्न रह कर, उसका उपयोग करने के लिये सुअवसर बराबर प्राप्त रहे। इस प्रकार का आनन्द परिवर्तनशील दुनिया में संभव नहीं है।

सभी सोचते हैं कि अमुक काम कर लेंगे तो हम सुखी हो जायेंगे, किन्तु यह धारणा शीघ्र ही कल्पना बन कर रह जाती है। थोड़ा लौकिक सुख की प्राप्ति भी हो जाती है किन्तु वह स्थायी नहीं रह पाता क्योंकि सांसारिक जितनी भी वस्तुयें हैं, सभी नाशवान हैं, क्षण भंगुर हैं, अस्थायी हैं। आज जिस वस्तु की सुंदरता है वह कल नहीं रह पाती क्योंकि यह संसार परिवर्तनशील है। इसीलिए प्राणी को स्थायी सुख की खोज करनी चाहिये। स्थायी सुख के लिये ही पूज्यपाद श्री अनन्त श्री गोस्वामी तुलसी दास जी ने राम चरित मानस की रचना की जिसके आलोकन से, या पूजा से कितने जीवों का कल्याण हो गया और प्रतिदिन होता है और आगे भी होता रहेगा। उसी रामायण जी से हमारे परमाचार्यों, श्री रामा जी महाराज, श्री अनन्त श्री गुरुदेव भगवान ने विवाह लीला को खोज कर अपनी उपासना का प्रधान अंग बनाया।

जिन ढूढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ।।

यह विवाह उपासना लाखों जीवों का कल्याण करता रहता है। विवाह–लीला सभी लीलाओं में सरस है। वैसे तो भगवान की सभी लीलायें दिव्य तथा सुखकर हैं, पर सभी लीलाओं में कभी रुदन, कभी वियोग आदि का

समावेश है। किन्तु विवाह–लीला में केवल सुख ही सुख है। परात्पर सुख की अनुभूति सदैव मिलती है तथा एक रसता है। यह विवाह प्रेम नगरी मिथिला में संपन्न हुआ जहाँ प्रेमी श्री राम भद्र जू के स्वागत के लिये क्षीर स्वामिनी श्री किशोरी जी ने मिथिला के प्रत्येक वस्तु में प्रेम का संचार कर दिया था। जब सरकार मिथिला पहुँचे तब उन्हें हर स्थल पर प्रेम ही प्रेम दिखायी देता था।

बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत।।227।।

वैसे तो विवाह बहुत पहले ही हो गया जबकि रामायण की रचना बाद में हुई। हमारे परमाचार्य गोस्वामी जी ने देखा कि कलियुगी जीव से अपराध बहुत होगा। धर्म–कर्म में मन नहीं लगेगा। इसलिये जीवोद्धार के लिये उन्होंने मानस की रचना की जो सबसे अधिक सम्मानित और लोक–प्रिय बन गया है। इस ग्रंथ की पूजा करने से, कथा सुनने से, राम–लीला देखने से व्यक्ति का हृदय पवित्र हो जाता है। इन्हीं में विवाह सर्वोपरि लीला है। हमारे सरकार ने और श्री किशोरी जी ने दुलहा–दुलहिन रूप में भक्तों के आनन्द वर्द्धन के लिये अवतार लिया:

"भक्त हेतु लीला तन गहही।"

इस विवाह में सबों को आनन्द मिला: यह विवाह अति हित सबही का। फिर भी उनके लिये ज्यादा हितकर होगा जो इसमें भाग लेंगे।

सिय रघुवीर विवाह जो सप्रेम गावहीं सुनहीं
तिन कह सदा उछाह मंगलायतन राम यश।

सांसारिक जगत में भी विवाह सबसे अधिक महत्व का होता है। जब दुलहा आते हैं तब दुश्मन भी छिप कर देखता है कि दुलहा कैसा है? और इसमें समाज के सभी अंग भाग लेते हैं, जैसे माली, कुम्हार, बढ़ई, लोहार, डोम, ब्राह्मण। इनके द्वारा जो सरकार की सेवायें होती हैं, उनसे इनका कल्याण भी हो जाता है।

धनुष–भंग का समाचार बिजली की तरह चौदहो भुवन में फैल गया:

भुवन चारि दस भरा उछाहूँ, जनक सुता रघुवीर विवाहूँ।
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे, मग गृह गली सवारन लागे।।

धनुष–भंग के बाद महाराज जनक जी विश्वामित्र जी के पास आये कि अब क्या करना है क्योंकि जैसी प्रतिज्ञा थी वैसा हो गया। धनुष टूटने पर विवाह हो जाना चाहिये। किन्तु त्रिकालज्ञ मुनि ने सोचा कि इस तरह विवाह हो जाने से तो सबों

को आनन्द नहीं मिल पायगा और तीनो भाई भी कुँवारे रह जायेंगे। विधि के विधानुसार सभी भाइयों का विवाह एक साथ होना है। अतः उन्होंने कहा:

तदपि जाई तुम करहु अब यथा वंश व्यवहार।
बुझी विप्र कुल बृद्ध गुरू वेद विदित आचार।।

कुल की, विप्र लोक की तथा गुरू वेद की रीति के अनुसार विवाह हो। जनकपुरवासियों को तो सुख मिला। अब अवधवासियों को भी सुख मिलना चाहिये। बारात आयेगी तो दोनों समाज को परमानन्द होगा। खबर नहीं देने पर चक्रवर्ती जी सोचेंगे कि उनकी उपेक्षा हुई। देवतागण भी अपने-अपने विमान पर सवार होकर इस विवाह का आनन्द लेने आये थे:

शिव ब्रह्मादिक विबुध बरुथा। चढ़े विमानन नाना यूथा।।
प्रेम पुलक तन हृदय उछाहूँ। चले विलोकन राम विवाहू।।

जनकपुर आने पर सभी देवताओं का अभिमान जाता रहा। खासकर देवराज इन्द्र को अपने वैभव का अभिमान था। एक डोम के घर का वैभव देखकर वे आश्चर्य चकित हो गये:

जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो विलोकि सुर नायक मोहा।।

चौदह भुवन वासी वर दुलहिन पक्ष में बहुत आनन्द-वर्द्धन हेतु केवल सम्मिलित ही नहीं हुये बल्कि प्रिया-प्रीतम को आनन्द-उल्लास में निमग्न रखने के लिए आनन्द वर्द्धनी सेवायें उपस्थित किये। यथाः, देवताओं का पुष्प-वर्षाना, आकाश में बाजा बजानाः *नभ अरु नगर कोलाहल होई*।। अप्सराओं का नाचना, देव पत्नियों का छिपे वेष में सखी बन कर संगीत गाना और मंगल उपचार में योगदान देना, देवताओं का प्रकट होकर पूजा लेना।

"सुरन्ह सुमगंल अवसरू जाना। बरसहिं सुमन बजाई निसाना ।।
सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा ।।1।।

*

प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले विलोकन राम विआहू ।।
देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे।।2।। दोहा 313/1, 2

*

सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर विआहु ।।314।।

*

कपट विप्र बर बेष बनाएँ। कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ।।
पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचाने।। दोहा 320/4

सुर प्रगटि पूजा लेहिं देही आशीष अति सुख पावहीं।।
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहिं समय मुनि मन महुं चहैं।
भरे कनक कोपर कलश सबकर लिए परिचारक रहैं।।
कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सब सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाई सीतहीं सुभग सिंहासन दियों।।छंद 323/1

✳

सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहुँ न लखि परे।
मन बुद्वि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करे।। 2।।

✳

होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं।।दोहा 323

तुलसी दास जी ने विवाह का जो चित्र अपनी लेखनी से प्रस्तुत किया है उसको हमारे पूर्वाचार्यों ने पदों से सजा कर बिल्कुल सजीव कर दिया है। **रामचरित मानस** के अनुसार जबसे सृष्टि हुई तबसे परात्परब्रह्म श्री राम जी के इस विवाह के ऐसा यही एक अनुपम मंगलमय आनन्दमय अत्सव हुआ है :

भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबही कहा।।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मगंलु महा।।छंद–325

यही कारण है कि श्री सीता राम विवाह के जैसा दूसरा कोई उत्सव हो ही नहीं सकता। यह परात्पर प्रेम का एक मात्र प्रतीक बन सका है। पर यह तभी संभव हुआ जब पूर्ण राम और उनकी अहलादिनी शक्ति श्री सिया जू ने दुल्हा–दुल्हिन के रूप में प्रणय–पाश में सम्बद्व होने की लीला की। श्री राम जी जब दुल्लह वेष में मंडप में आकर विराजते हैं तो जिस पद से उनकी अराधना की जाती है उसको पूरे ध्यान और सजगता के साथ श्रवण करने से लगता है जैसे जिन परमात्मा के दर्शन का लाभ मनु–सतरूपा को हजारो–हजार वर्ष की घोर तपस्या के फल से प्राप्त हुआ था वो स्वरूप पूरा का पूरा सामने उपस्थित हो गया हो। पद है:

अलबेलो दुलहा रघुनन्दन देखत हीं सबको मन बसि गये,
कुसुमी पाग मौर सिर सोहे, काजल नयना पान मुख लसि गये।
घुँघुराली अलके लटकें सिर, पीत दुपट्टा पै मन बसि गये,
पीताम्बर शुभ कटि में राजे, चरण महावर मोतिन गसि गये।
द्विज दुनियाँ मणि यह छवि निरखे, सो–सो प्रेम के फंदा में फंसि गये।

✳

न तीसी के सुमन में न दुर्वाहु के दलन में,
न जम्बू के फलन में न यमुना के जल में।
न नीलमणि कंज में न तरुण तमाल में,
न सांझ समय देखिये तो सावन के घन में।
जैसी श्यामताई छाई आज बिबाह के उछाह समय,
कौशल किशोर श्री राजीव लोचन बड़का नौशे बबुआ के बदन में।

*

तुलसी दास जी **रामचरित मानस** में दुलहा बने भगवान के लिये इस प्रकार लिखते हैं :

स्याम सरीर सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन।।
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये।। 1।।
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रबि दामिनि जोती।।
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषण सुदंर।। 2 ।।
पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई ।।
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषण राजे ।। 3।।
पिअर उपरना काखासोती। दुहूँ आचरन्हि लगे मणि मोती ।।
नयन कमल कल कुडंल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना ।।4।।
सुदंर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रूचिरता निवासा।।
सोहत मौर मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे ।।5।।

अतएव दुलहिन–दुलहा रूप का ध्यान, चिंतन, स्मरण, कीर्तन करने से ही प्रेम–स्वरूप आनन्द–स्वरूप परात्पर प्रेम की वृद्धि हो सकती है। इस कारण विअहुती भवन में श्री महाराज जी ने इस विवाह को ही उपासना बनाया और *'सदा वसंत सदा ही होली'* का प्रचार–प्रसार किया। रामायण जी में सरकार के इस विवाह–चरित्र को वसंत ऋतु बताया गया है। वसंत ऋतु इस लोक में ही हर प्रकार से आनन्द का प्रतीक माना जाता है। अतएव वसंत रूप यह विवाह–चरित्र भी आनन्द का स्वरूप है।

एक तो सरकार की बाल रूप–लीला भी आनन्द–वर्द्धक है। परन्तु उसमें बाल–लीला होने के कारण रोना–धोना, हठ करना आदि बातें भी हैं जो थोड़े समय के लिये दुःखदायी हो जाती है। लगातार सुखमय आभास नहीं मिल पाता। विवाह के बाद श्री सरकार ने प्रधान लीला तपसी वेष धारण कर की। लेकिन उस रूप के चलते तो आरंभ से अंत तक विषाद ही विषाद की उपलब्धि होती है जिससे उनका यह रूप भी सतत् आनन्द का प्रतीक नहीं बन सकता।

अंतिम लीला सरकार ने राजा के रूप में लंका विजय के बाद की। लेकिन राजा रूप में भी सारा परिवार भरा-पूरा नहीं है: मातायें विधवा हैं और पिता जी साकेतवासी हो चुके हैं। अतएव इस अभाव के कारण भी पूर्ण आनन्द का उपभोग राजा रूप में संभव नहीं हो सकता। उपरोक्त के आधार पर यह निर्विवाद हो जाता है कि सतत् आनन्द की उपलब्धि एक मात्र युगल विवाह के अवसर पर ही हो सकी। अतएव उन्हें दुलहिन-दुलहा के रूप में ही ध्यान करना, चिंतन करना, उन लीलाओं को बार-बार दुहराना ही परस्पर प्रेम की अनुभूति एवं आभास कराने में समर्थ है। इसीलिए विवाह-उपासना विअहुती भवन के श्री महाराज जी का प्रधान साधन-साध्य बना रहा और उन्हें दुलहिन-दुलहा रूप में ध्यान करना उनके परात्पर रूप के ध्यान करने के समान मान लिया गया।

भगवान के युगल रूप का ध्यान और चितंन ही हमारे परमाचार्यो की मुख्य सीख है। उनके अनुसार श्री राम जी और उनकी अह्लादद‌ायिनी शक्ति जगजननी श्री सियास्वामिनी जी पल भर के लिये भी कभी अलग नही होते। उस रूप के ध्यान, चिंतन के लिये विवाह के उपरान्त की मंडप की झॉकी में गाये जाने वाला पद –

शोभित सीताराम कनक मण्डप तरे,
सिर सोने को मौर मंजु मुक्ता गरे।
परसत अमल कपोल सुमुक्ता मौर के,
राजिव लोचन लोल कमल मानो भोर के।
सुरंग चुनरी के निकट पीत पट छुई रहयो,
मनहु अरुण घन मध्य चपलता होई रहयो।
सिय भूषण प्रतिविम्ब राम छवि उर धरे,
मनहु जमुन जल मध्य दोउ दीपक बरे।
राम भुजा के निकट सीय भुज यों लसे,
मरकत मणि के खंभ मनहुँ कंचन कसे।
राम भये तन गौर सिया भई साँवरी,
शारद सी वुधिवन्त बधु भई बावरी।
राम भये घन श्याम सिया भई दामिनि,
मुनि भय चन्द चकोर चकित भई भामिनि।
राम-सिय को ध्यान सदा शंकर धरे,
ब्रह्मा रूप निहार इन्द्र पूजा करे।
यह छवि युगल किशोर सु मुनिजन ध्यावहीं,
लखि-लखि विमल विनोद वेद यश गावही।

तुलसी सीताराम सदा उर आनिये,

राम भजन विनु जन्म वृथा करि मानिये।

प्रश्न उठता है कि विवाह तो एक ही बार हो गया फिर इसे बार–बार क्यों मनाते हैं? तो, सरकार का अवतार कई कारणों से होता है, किंतु श्री राम जी का अवतार सभी अवतारों में श्रेष्ठ माना जाता है। अन्य जितने अवतार हुये हैं, वे इस अवतार के अंश माने जाते हैं तथा हमारे सरकार का अवतार अवतार कराने वाला होता है। यानि ये अंशी हैं तथा अन्य अवतार अंश। हालाकि, पेड़ की जड़, डाल और पत्ता में कोई अन्तर नहीं है, फिर भी प्रधानता तो जड़ की ही है। यदि जड़ नहीं रहेगा तो पेड़–पौधा कहाँ से आयगा? जैसा कि रामायण जी में आया है:

संभु बिरंचि विष्णु भगवाना।

उपजहिं जासु अंस तें नाना।(3)/144 बाल कां०

और श्री किशोरी जी के लिये आया है:

जासु अंस उपजहिं गुण खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।। (2)/148

तो, यह जो अवतार हुआ वह विशेष कर भक्तों के लिये हुआ। "*भगत हेतु लीला तनु गहई*।" (4)/144

दुष्टों का संहार तथा पृथ्वी पर विलुप्त धर्म की स्थापना तो अंश रूप में विष्णु भगवान के अवतार से भी संपन्न हो सकता था। किन्तु जो भक्त सरकार के ध्यान में हमेशा लगे रहते हैं; एक पल के लिये भी विलग नहीं होना चाहते हैं, वैसे भक्त सरकार के नजदीकी होते हैं जिनके वियोग को सहन नहीं कर सकने के कारण, सरकार अपने साकेत धाम के सुख को छोड़ कर इस पृथ्वी पर अवतरित हुये। मनु–सतरूपा ने कितने हजार वर्ष तपस्या करके सरकार का अवतार कराया। कहने का मतलब है कि हमारे श्री किशोरी जू तथा सरकार ने अवतार लेकर भक्तों के सुख के लिये दुलहा–दुलहिन रूप की लीला की। इस विवाह में ही परात्पर सुख की अनुभूति होती है। इसीलिये विवाहोपासना ही हमारे श्री महाराज जी का प्रधान साधन–साध्य बना रहा और उनके दुलहा–दुलहिन रूप का ध्यान करना उनके परात्पर रूप के ध्यान करने के समान मान लिया गया।

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ॥361॥

दुलहा–दुलहिन सरकार की जय!

नाम महिमा

पुजारी जी महाराज सबसे पहले सभी को भगवान का नाम जपने का ही अभ्यास कराना चाहते थे। उनका मानना था कि किसी भी बड़े कार्यक्रम को आरंभ करने के पहले 24 घंटे का यानि अष्टयाम नामजप हो ताकि भगवान के नाम की ध्वनि से बाधाओं और अमंगल का नाश होगा, तथा सुनने वालों के हृदय में भगवान का प्रवेश होगा। नाम जप के प्रभाव से एक वातावरण तैयार होता है, और जपने वाले का हृदय इस लायक होता है कि वह विवाह उत्सव की गूढ़ता को ग्रहण कर पाये। सच तो यही है कि जब तक व्यक्ति की कुछ जप–साधना नहीं होती है विवाह की लीला खेल–तमाशे की तरह ही लगेगी।

सबसे पहले यह समझना है कि नाम का इतना महत्व क्यों?

वेद के अनुसार सारे ब्रह्मांड की सृष्टि ब्रह्मांड–नायक की कल्पना का प्रतिफल है। उन्होंने पंच तत्व, नक्षत्र, सूर्य, चंद्रमा आदि की सृष्टि अपनी कल्पना के अनुसार की। अतएव उनकी कल्पना में जिस वस्तु का जैसा महत्व था, सृष्टि के बाद भी उन चीजों का वही महत्व प्रकट हुआ। वेद का कथन है कि 'सृष्टि यथापूर्वक अकल्पयत' है। इस नाम रूप का महत्व भी उनके मानस से ही प्रकट हुआ है।

श्री सरकार के कल्पनानुसार जिस सृष्टि का निर्माण हुआ उसमें निम्नलिखित बातों की प्रधानता पायी जाती है:–

क– अपने शरीर के बाह्य और अभ्यंतर जगत में सभी तत्वों एवं हृदय के पदार्थों का नाम से बोध होता है। अर्थात् यह सृष्टि नाम प्रधान है।

ख– जिनका नाम है उनका रूप भी होता है। जो तत्व दृष्ट नहीं हैं उनका भी नाम होता है। यथा, दया, क्षमा, करुणा, क्रोध, लोभ आदि का बोध भी रूपधारी लोगों से ही होता है। किसी में मुख– मुद्रा और आचरण को देख कर ही पता चलता है कि उनमें क्रोध आ गया है। वे लोभी हैं या दयालु हैं, इसका भी बोध

किसी रूप धारी के द्वारा ही होता है। इसी प्रकार दया, क्षमा आदि का भी बोध होता है। इसीलिये ऐसा मानना होगा कि इन गुणों आदि का भी रूप है।

ऊपर के दिये गये सिद्धांतों के अनुसार अनुमानतः यह सिद्ध होता है कि सृष्टि–कर्ता का भी नाम और रूप होगा। नाम याद होने से भी उस नाम वाले रूप की याद आ जाती है। अतएव सृष्टि कर्ता के भी नाम याद होने से उनका रूप याद हो जायगा। सारे संसार में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उनकी प्राप्ति नाम लेने से ही होती है। यह प्रत्येक क्षण के व्यवहार से सिद्ध होता है। मुँह धोने की आवश्यकता होने पर दतवन का नाम लेते हैं तब दतवन की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार हर दैनिक व्यवसाय के क्षेत्र में जिन–जिन चीजों का नाम लेकर माँग की जाती है, वही वस्तु प्राप्त होती है। इस प्रकार भी सिद्ध हुआ कि जब ब्रह्मांड–नायक का नाम है तब उनकी प्राप्ति भी नाम ही के द्वारा होगी।

व्यवहार जगत में जिन–जिन चीजों को व्यवहार में लाते हैं, उनका नाम लेने की आवश्यकता होती है। भगवान का नाम लेने की आवश्यकता दैनिक व्यवहार में नहीं है। क्योंकि ब्रह्मांड–नायक की प्राप्ति नाम लेने के द्वारा ही पूरी होगी अतएव उनका नाम लेने का अभ्यास करना होगा। इस अभ्यास की पूर्ति के लिये ही शास्त्रकारों ने यह बताया है कि अपने विश्राम काल का कुछ समय काट कर भगवान के नाम जपने का अभ्यास किया जाय। इसके लिये प्रातःकाल का दो–तीन घंटे का समय निंधारित किया गया है। इसके अलावे अष्टयाम नाम जप, नवाह नाम जप का विशेष आयोजन कर भी नाम जप के अभ्यास को बढ़ाने का कार्यक्रम शास्त्रों के द्वारा निर्मित हुआ है। ऐसे अभ्यास का फल यह होगा कि जपते–जपते नाम जप सहज स्वभाव बन जायगा। संसारिक कार्यों को करते हुये भी नाम जप होता रहेगा। नाम जप के माध्यम से उस अवस्था में पहुँच जाता है कि यह बोल–चाल में भी सखुन तकीया बन जाय।

नाम जप ही कलियुग में एक मात्र आधर माना गया है जिसके द्वारा भगवत् प्राप्ति हो सकती है। इसे आसान बनाने के लिये जापक को सब प्रकार की छूट दी गयी है। हर अवस्था, हर कार्य में नाम जप किया जा सकता है। चलते–बैठते रोते–गाते सभी अवस्था में लाभदायी है। श्री भगवान् श्री कृष्ण का गीता में यह बात उपरोक्त बातों का समर्थन करता है जो अर्जुन से कहा गया है: "तस्मात सर्वे सकाले समान अनुस्मरण"।

सारे संसार में परिचय नाम के द्वारा कराया जाता है। नाम विशेष वाले की स्मृति भी नाम के द्वारा ही होती है। और उस नाम वाले की प्राप्ति भी नाम के द्वारा ढूढ़ने से होती है। इससे सिद्ध हुआ कि ब्रह्मांड नायक का परिचय नाम द्वारा कायम रहेगा और उनकी प्राप्ति भी नाम के द्वारा ही होगी।

नाम जी की महिमा अपार है। तुलसी दास जी नाम की बड़ाई करते नहीं थकते। भाँति- भाँति से नाम की महत्ता बताते हैं:

"राम न सकही नाम गुण गाइ।"

फिर कहते हैं, "को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुण भेदु समुझिहहिं साधू।।
देखिआहिं रूप नाम अधीना। रूप ग्यान नहीं नाम बिहीना ।।"

नाम और रूप दोनो एक दुसरे पर आश्रित हैं। ब्रह्म का रूप किसी ने देखा तो नहीं होता पर उनके नाम का प्रेम सहित जप करने से विशेष भाव उत्पन्न होता है और परमात्मा का एक रूप हृदय में जाग्रत होता है। समझ कर पूरे हृदय से नाम जप करते रहने से नाम और नामी में ऐसी एकता स्थापित हो जाती है कि भगवान को अपने नाम का अनुसरण करना पडता है। ऐसे भक्त जब भी उनका नाम लेकर पुकारेंगें भगवान को प्रगट होना पडता है। प्रत्येक के हृदय में ईश्वर की सत्ता विराज रही है, फिर भी सारे जीव दीन–दुखी बने हुए हैं। अगर सभी नाम का प्रभाव जान कर जप का आसरा लेते हैं तो "*नाम सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा।।*" इससे भी ज्यादा तुलसी दास जी नाम जप के लिये सभी प्रकार की छूट दिये हुए हैं। "*भाय कुभाय अनख आलस हू। नाम जपत मंगल दसो दिसिहूं।।*" अवतार लेकर तो भगवान अपने समय में बहुतों का संहार, उद्धार, और कल्याण किये। पर यह सृष्टि तो अनादि है और जबतक कायम रहेगी भगवान का नाम निरंतर चलता रहेगा और कोटि–कोटि लोगों का कल्याण हर समय में नाम के माध्यम से होता रहेगा।

"राम नाम मणि दीप धरू जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौ चाहसि उजियार।।दो021

तुलसी दास जी की इस उक्ति के अनुसार नाम जप को ऐसा सिद्ध कर लिया जाय कि नाम हर वक्त जीभ पर विराजमान हो जाये तो इसके प्रभाव से हर व्यक्ति के अंदर ईश्वर की जो सत्ता है वो जाग्रत हो जायगी। इस प्रकार नाम को धारण करने का प्रभाव घर के बाहरी दरवाजे के मध्य में रखे दीपक के समान हो जाता है। दरवाजा के मध्य में रखे हुए दीपक का प्रकाश घर के अंदर और बाहर समान रूप से फैलता है। ठीक इसी प्रकार नाम जप का प्रभाव भी व्यक्ति के अंदर और बाहर दोनो को प्रकाशित कर देता है। नाम जप से ऐसी स्थिति बन जाय कि प्रभु का नाम मणि बनकर जीभ पर हर वक्त विराजे, तो यह

नाम ईश्वर की विश्वव्यापी सत्ता जो कण– कण में समान रूप से व्याप्त है उसको अदंर की प्रकाशित या जाग्रत सत्ता से मिलाकर एक करने का काम करेगी। ऐसे व्यक्ति में कोई सशंय, भ्रम, अज्ञानता बाकी नहीं रहेगी। उसको सृष्टि के हर कण की जानकारी हो जायगी। आगे तुलसी दास जी ने लिखा है कि जो साधक हैं और सारी सिद्वियों को प्राप्त करना चाहते हैं, या जो ज्ञानी भक्त हैं और परमात्मा के गूढ़ रहस्य को जानना चाहते हैं, सभी नाम जप का आसरा लेते हैं।:

"जाना चहहिं गूढ गति जेउ। नाम जीहं जपि जानहि तेउ।।
साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्व अनिमादिक पाएँ।।दो021/ 2

कहाँ तक नाम जी की बड़ाई की जाय। श्री नाम जी की महिमा आपार है । शेष, शारदा, वेद, पुराण, श्रुति कोई भी पूर्ण रूप से उनका बखान करने मे समर्थ नही है।

"नेति–नेति जेहि वेद निरूपा।"
"निगम नेति शिव अंत न पावा।"

श्री सीताराम नाम की जय।